जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

धर्म परिभाषा नहीं, प्रयोग है और जीवन है धर्म की प्रयोगशाला।

- बिन्दु में सिन्धु, पृष्ठ - 20

वर्ष : 26, अंक : 7 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
जुलाई (प्रथम) 2003 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पण्डित संजीवकुमार गोधा | वार्षिक शुल्क : 25/-, एकप्रति : 2/-

सम्पादकीय -

पण्डित प्रकाशचन्दजी हितैषी : एक सरल व्यक्तित्व

- रतनचन्द भारिल्ल

सन्मति सन्देश के जन्मदाता और जीवनभर उसका सफल संचालन एवं सम्पादन करनेवाले पण्डित प्रकाशचन्दजी ने उक्त पत्रिका के द्वारा आध्यात्मिक दृष्टिकोण की प्रमुखता से जन-जन में जैनदर्शन का खूब प्रचार-प्रसार किया। क्या बालक, क्या महिलायें और क्या कम पढ़े-लिखे पाठक - सभी के योग्य उपयोगी प्रकाशन सामग्री का सदा ध्यान रखा। आपने विवादास्पद समाचारों को निर्भीकता से किसी भी लाग-लपेट के बिना निष्पक्षता के साथ प्रकाशित किया। समीक्षा के कालम द्वारा नये-नये लेखकों को तो प्रोत्साहित किया ही, श्रेष्ठ पुस्तकों की समुचित समीक्षा करके उन पुस्तकों के प्रचार-प्रसार में भी सदैव योगदान दिया।

अधिक साधन सम्पन्न न होने पर भी अकेले ही पूर्ण परिश्रम और ईमानदारी से जीवनभर सन्मति सन्देश की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाते रहे, उसका स्तर कायम रखे रहे, यह एक बहुत बड़ी बात है।

आपने सिद्धान्तों से समझौता न करके भी अपने सरल व्यवहार से सबको यथायोग्य सम्मान दिया। सबसे मिल-जुलकर रहने की नीति से ही आप सबके प्रिय बने रहे। आपको यदि अजात शत्रु भी कहा जाये तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

श्री हितैषीजी छल-दम्भ से दूर, स्पष्टवादी थे। आपने खान-पान एवं आचार-विचार में भी एक श्रेष्ठ सामान्य श्रावक के रूप में जीवन व्यतीत किया। आपकी धर्मपत्नी भी आपकी परछाई बनकर रहते हुये सुख-दुःख एवं धर्मसाधना में सदैव सहभागी रहीं। उनके सहयोग से ही 88 वर्षीय वयोवृद्ध हितैषीजी जाते-जाते जिनवाणी की सेवा में सतत् जागृत रह सके।

हितैषीजी का हृदय अध्यात्म विद्या और विद्वानों के प्रति अनन्य स्नेह से भरा था। जैसा उनका उपनाम था, सचमुच वे वैसे ही सबके हितैषी थे।

गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्वारा खोजे जिनवाणी के रहस्यों को अत्यन्त सरलता से जन-जन तक पहुँचाने का जो काम सोनगढ़ से हो रहा था, उस काम में सहयोग देने के लिए पण्डितजी पूर्ण समर्पित थे। वे उन रहस्यों को सन्मति सन्देश द्वारा तो उद्घाटित करते ही थे, अपने प्रवचनों में भी उन्हीं सिद्धान्तों को पूरी दृढ़ता के साथ प्रस्तुत करते थे। पण्डितजी को पुण्य के योग से गुरुदेव जैसे सत्पुरुष का सत्समागम तो मिला ही, साथ ही 19 वीं सदी के प्रसिद्ध विद्वानों का भी सान्निध्य मिला। इन सभी कारणों से एक छोटे से गाँव में जन्मा साधारण व्यक्ति असाधारण बन गया।

निश्चय ही श्री हितैषीजी के अभाव से एक अपूरणीय क्षति हुई है। निकट भविष्य में ऐसा सरल, परिश्रमी और जिनवाणी का आराधक तथा आत्म साधक आदर्श व्यक्तित्व की पूर्ति होती दिखाई नहीं देती। हमारी मंगल कामना है कि दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मुक्ति प्राप्तकर अतीन्द्रिय आनन्द का रसपान करे।

कहान-संदेश

धर्मी की मंगल भावना

16

जिनवचन में शुद्ध द्रव्य अर्थात् त्रैकालिक ध्रुव वस्तु ही मुख्य है; इसलिये वही उपादेय है। ऐसे त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध चैतन्य को मुख्य करके उसमें जो पुरुष रमते हैं, प्रचुर प्रीति सहित बारंबार अभ्यास करते हैं, वे पुरुष शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मा का तुरन्त ही स्वानुभव करते हैं। परम शुद्ध चैतन्य ज्योति को देखते हैं, अनुभवते हैं अर्थात् उसमें क्रीड़ा करते हैं।

प्रश्न : ज्ञानी को जिसप्रकार शरीर भिन्न दिखाई देता है, उसीप्रकार रागादि भी भिन्न दिखते हैं क्या ?

उत्तर : ज्ञानी को शरीर की भाँति रागादि भी अत्यन्त भिन्न दिखते हैं। जैसे दर्पण की स्वच्छता दर्पण को बतलाती है और अग्नि की ज्वाला आदि को भी दर्शाती है; तथापि दर्पण में दिखनेवाला स्वपर के आकार का प्रतिभास-प्रतिबिम्ब वह दर्पण की स्वच्छता की ही अवस्था है। वह कहीं अग्नि की अवस्था नहीं है। प्रतिबिम्बित वस्तु की अवस्था नहीं है। तथा जैसे पदार्थ दर्पण के सन्मुख हों वैसा प्रतिबिम्ब बतलाना दर्पण की स्वच्छता का स्वभाव होने से प्रतिबिम्बित पदार्थ के कारण प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता; परन्तु दर्पण की स्वच्छता के कारण पड़ता है; उसीप्रकार ज्ञातापना आत्मा का ही है अर्थात् आत्मा स्व-पर का ज्ञाता ही है। भावकर्म, द्रव्यकर्म तथा नोकर्म पुद्गल के परिणाम हैं। ज्ञानस्वरूपी ज्ञायक को ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर उसका ज्ञान करना तथा परज्ञेयों को ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर तत्सम्बन्धी ज्ञान करना, वह ज्ञान का स्वत: सिद्ध स्वभाव ही है। परद्रव्य हैं; इसलिए उनका ज्ञान हुआ - ऐसा पराश्रित है ही नहीं।

परभाव होने पर भी अर्थात् दया, दान, पूजा, भक्ति तथा काम-क्रोधादि परभाव होने पर भी जो अपनी तीक्ष्णबुद्धि से सहज गुणमणि को खानरूप एक शुद्धात्मा को ही भजता है, वह मुक्तिसुंदरी का बल्लभ होता है। अब मुक्तिसुंदरी उससे दूर नहीं रह सकती। पर्याय में विकारभाव तो है; परन्तु उसपर से दृष्टि हटाकर सहज गुणमणि की खानरूप शुद्धात्मा को भजनेवाला ही शुद्धदृष्टिवान है।

शिक्षण शिविर पत्रिका

शिक्षण शिविर पत्रिका

तत्त्वचर्चा

समयसार का सार

70

गतांक से आगे

– डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

यदि कोई किसी को दे सकता है और ले सकता है तो स्वयं के लिए किए गये कर्म सब बेकार हो जायेंगे।

हिन्दी साहित्य में सेनापति नाम के एक रीतिकालीन कवि हुए हैं, उन्होंने गंगा की स्तुति लिखते हुए व्यंग्य में एक महत्त्वपूर्ण बात की है –

हे गंगा मैया ! तू पापप्रचारणी है, पापविनाशनी नहीं।

किसी ने कहा कि हमने तो सुना है कि गंगा में गोता लगाने से सारे पापों का नाश हो जाता है, वह पापों को धोनेवाली है और तुम कहते हो कि वह पाप का प्रचार करनेवाली है।

अरे भाई ! जिसके पास ऐसी गंगा मैया हो कि चाहे जितने पाप करे और एक गोता लगाने से सारे पाप धुल जाय; वह पाप करने से डरेगा क्यों ? दिन भर जमकर पाप करें, शाम को एक डुबकी लगाये और सब पाप साफ हो जाय तो वह पापप्रचारणी हुई कि पापनाशनी ?

मेरे इस सफेद कुर्ते में यदि जरा–सा धब्बा लग जाय, तो पहनने के काम का नहीं रहता है; इसलिए मैं संभलकर रहता हूँ। यदि मुझे ऐसा पाउडर मिल जाय कि दाग का पता ही नहीं चले तो फिर मैं क्यों डरूँगा, फिर तो चाहे जितने धब्बे लगे मेरे सफेद कुर्ते पर, मैं उस पाउडर में डालूँगा और तुम ढूँढते रह जाओगे कि वे दाग कहाँ गये ?

इसीप्रकार यदि जगत में ऐसा कोई इंतजाम हो कि पाप कर्मों को बिना भोगे ही धोया जा सकता हो तो फिर कोई पाप करने से क्यों डरेगा ?

न्याय तो यह है कि जिसने अपराध किया है, उसे दण्ड मिलना ही चाहिए और जिसने अच्छा काम किया है, उसे उसका फल भी मिलना ही चाहिए।

स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेनेवाले एक माखनलाल चतुर्वेदी नाम के कवि हुए हैं; वे लिखते हैं –

हे ईश्वर तू क्या कर सकता है इंसाफ।
अरे प्रार्थना की रिश्वत पर कर देता है माफ।।

हे भगवान ! तू इंसाफ क्या करेगा ? कोई कितने भी पाप क्यों करे; जरा–सी प्रार्थना करने पर माफ कर देता है, माफ करनेवाले इन्साफ नहीं कर सकते।

वे कहते हैं कि यदि कोई आदमी मुझे पीटे, तो मैं उसकी शिकायत भगवान तेरे दरबार में लेकर नहीं आऊँगा। मैं उस इंस्पेक्टर के पास जाऊँगा जो एक नम्बर का घूसखोर होगा; क्योंकि तुम्हारे पास आने से क्या फायदा ? वह आदमी आयेगा, माफी माँगेगा, एक नारियल चढ़ायेगा और तुम सारे पाप माफ कर दोगे; तुम्हें तो ढंग से घूस लेना भी नहीं आता।

मैं पहली बात यह कहता हूँ कि उसने मेरे विरुद्ध अपराध किया है, माफ करने का क्या अधिकार भी है तुझे ? वह मुझसे माफी माँगे और मैं माफ करूँ या न करूँ – यह मेरा अधिकार है।

वह पुलिस इंस्पेक्टर कम से कम 1 हजार रुपए की घूस लिये बिना उसे नहीं छोड़ेगा तो मुझे पीटने का कम से कम 1 हजार रुपये का जुर्माना तो हुआ। तेरे पास तो वह भी नहीं होता है, न्याय सजा देने का नाम है, माफ करने का नहीं।

इसलिए कहा है कि यदि दूसरे के द्वारा किसी में कुछ होने लग जाय, तो फिर हमारे द्वारा स्वयं किये गये कर्म बेकार हो जायेंगे।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोपि कस्यापि ददापि क्ष्+घचन।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः परोददातीति विमुच्य शेमुषीम्।।31।।

प्राणियों को अपने द्वारा किए गये कर्मों को छोड़कर कोई कुछ नहीं देता – ऐसा विचार करके समझदार लोगों को दूसरा मुझे दे देगा – ऐसी दीनता की बुद्धि छोड़ देनी चाहिए। मैं दूसरों को कुछ दे दूँगा – ऐसे दया का अहं भी छोड़ देना चाहिए।

जरा कल्पना करो कि यदि किसी क्लर्क के दिमाग में ये जम जाये कि काम करने से क्या होता है; तरक्की तो तब होगी, जब साहब खुश रहेंगे। – ऐसी श्रद्धा वाला क्लर्क काम क्यों करेगा ? वह तो साहब के घर के चक्कर लगायेगा।

यदि एक विद्यार्थी को यह भरोसा हो जाय कि पढ़ने से क्या होता है ? पास तो तभी होंगे, जब मास्टरजी खुश होंगे। वह विद्यार्थी पढ़ेगा क्यों ? वह तो मास्टरजी के घर के चक्कर लगायेगा।

एक व्यापारी को यह विश्वास हो जाय कि न्याय की कमाई से कहीं कोई आज तक करोड़पति हुआ है ? यदि करोड़पति बनना है, तो नीचा–ऊँचा तो करना ही पड़ेगा।

एक मुख्यमंत्री को यह भरोसा हो जाय कि जनता की सेवा करने से क्या होता है ? गद्दी पर तो तभी सुरक्षित है, जबतक कि प्रधानमंत्री खुश रहेंगे, वह जनता की सेवा क्यों करेगा ?

अगर विद्यार्थियों की यह श्रद्धा हो जाय कि मास्टरजी के घर के चक्कर काटने से क्या होता है ? पास तो तब होऊँगा, जब पढ़ाई करूँगा।

क्लर्क को यह भरोसा हो जाय कि किसी को जिन्दगी में एक बार ही धोखा दिया जा सकता है और वह भी सबको नहीं दिया जा सकता है। यदि लम्बे समय तक सही व्यापार चलाना है और मुनाफा कमाना है तो ईमानदारी से ही, विश्वास से ही काम करना होगा।

मुख्यमंत्री को यह भरोसा हो जाय कि दिल्ली के चक्कर काटने से क्या होता है ? जनता ∫उगैन खुश नहीं रहेगी तो तब तक मेरी गद्दी सुरक्षित नहीं है। तभी वह जनता की सेवा करेगा और देश की काया पलट हो जायेगी।

समयसार में भी यही कहा है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का

कर्ता–धर्ता है – ये मान्यता अज्ञान है और यही मान्यता बंध का कारण है।

जगत में जो जीव मर रहे हैं, सुखी हो रहे हैं, दुःखी हो रहे हैं; वे उनके पुण्य–पाप के उदय से हो रहे हैं। उनसे तेरे बंधने का और छूटने का कोई भी संबंध नहीं है। यही बंध अधिकार का मुख्य केन्द्रीय विचार है।

समग्र बंध अधिकार में अनेक उदीरण व तर्क देकर इसी बात को सिद्ध किया है।

देखो ! परमाणुमात्र भी परपदार्थ इसका नहीं है, फिर भी इसने अपनी मान्यता में अनंतानंत पदार्थों पर कब्जा कर रखा है।

अनादिकालीन ऐसी मान्यता होने पर भी एक भी परमाणु आज तक इसका हुआ नहीं है। यदि इसकी मान्यता से कुछ होने लगता, तो अबतक सारी दुनिया अस्त–व्यस्त हो गई होती।

मैं ऐसा मानता कि टोडरमल स्मारक भवन मेरा है, तो मेरे मानने से मेरा हो जाता, आप मानते तो आपका हो जाता और ऐसे ही अनंत जीव मानते, तो यह किस–किस का होता ?

वस्तु की व्यवस्था में सबसे बढ़िया बात यह है कि हम कुछ भी माने, हमारे मानने से जगत में कुछ भी नहीं होता।

यह तो बढ़िया बात है कि हमारे मानने से कुछ होता नहीं है। इससे जगत का कुछ बिगड़ा नहीं। हमारी मान्यता ही बिगड़ गई। यदि तुम दो और दो को पाँच मानो तो क्या दो और दो पाँच हो जायेंगे ? कितने ही काल तक मानो, रोजाना माला भी जपो, एक लाख ्उं मंत्र भी जपो तो भी हो जायेंगे क्या?

इसीप्रकार तू अनंतकाल से ये मानता आ रहा है कि स्त्री मेरी, पुत्र मेरे, मकान मेरे, शरीर मेरा, जायदाद मेरी, रुपये मेरे, पैसे मेरे; मैं इसे मार सकता हूँ, मैं इसे बचा सकता हूँ ,मैंने इतनों को मारा, मैंने इतनों को बचाया। लेकिन वस्तुस्वरूप की वजह से एक भी परमाणु आज तक तेरा हुआ नहीं है और पर में तेरे किये कुछ हुआ नहीं।

यदि तू कहे कि क्या ऐसा मानने से कुछ भी नहीं हुआ ?

अरे ! बहुत कुछ हुआ। तुम्हारे माथे पर अनंत कर्म आकर पड़े। तू अनंत दुःखी हुआ; क्योंकि ये मान्यता तेरे में थी; इसलिए दुःख भी तेरे में ही पैदा हुआ। वस्तु के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं हुआ, जगत में कोई अन्तर आया नहीं; पर तुझे बंध अवश्य हुआ।

जब हम यह कहते हैं कि इसे छोड़ दो, तो तुम पर दया करके कहते हैं, उस पर दया करके नहीं।

जब आप किसी को समझाते हैं कि भाई साहब ! आपको ऐसा नहीं करना चाहिए तो सबसे पहले गुस्से में वह बोलता है कि आप मेरे से ही कहते हो, उनसे कुछ नहीं कहते। गलती उनकी भी तो हो सकती है। अनेक लोगों की यह शिकायत रहती है न !

हम अपने विद्यार्थियों को समझाए कि तुम्हें उस छात्रावास के लड़कों से नहीं उलझना चाहिए तो वे कहते हैं कि क्या हमारी ही गलती है; उनकी कोई गलती नहीं ? उनसे आप कुछ नहीं कहते। हम कहते हैं अरे भाई ! हम तुम्हारे वार्डन हैं, उनके नहीं। बाप अपने बेटे से कहता है, हम तुम्हारे बाप हैं; उनके नहीं। हम तुम्हारा हित चाहते हैं, उनका नहीं।

तुम यह समझते हो कि हम तुमसे कह रहे हैं कि मारो मत, तो उनको बचाने के लिए कह रहे हैं, इस धोखे में मत रहना। हम तुम्हें बचाने के लिए कह रहे हैं कि उन्हें मारने जाओगे और पिट कर आओगे, फिर पुलिस में जाओगे, जेल में जाओगे। इन सब झंझटों से बचाने के लिए तुमसे कह रहे हैं, उन्हें बचाने के लिए नहीं कह रहे हैं।

उसीप्रकार ज्ञानी जीव कह रहे हैं कि हम तुमसे जो यह कह रहे हैं कि तुम उसे अपना मत मानो। तो इसलिए नहीं कह रहे हैं कि तुम उसे छोड़ दो, जिससे उसकी तकलीफ मिट जाय, उसे तो तुम पकड़ सकते ही नहीं हो। तुम अनंत दुःख में नहीं पड़ों, इसलिए तुमसे कह रहे हैं।

जीव मरे, चाहे न मरे, तो भी जिसके अध्यवसान भाव हैं, उन्हें बंध होगा। जीव मरे चाहे न मरे, लेकिन जिसके अध्यवसान भाव नहीं है, उन्हें बंध नहीं होता है, बंध का संबंध अध्यवसान भावों से है।

बंध अधिकार के सार को स्पष्ट करनेवाले इस कलश में आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं –

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं युदक्तं जिनै–
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यड्.निश्चयमेकमेव तदमी निष्कंपमाक्रम्य किं,
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नंति संतो घृतिम्।।183।।

अमृतचन्द्राचार्यदेव भगवान से कहते हैं कि हे भगवान ! तुमने जो ये कहा कि सभी अध्यवसान भाव छोड़ो। उससे मैं यह समझता हूँ कि आपने अन्य के आश्रय से होनेवाला सभी व्यवहार छुड़ाया है। पर के लक्ष्य से होनेवाले दूसरों को मारने के भाव, दूसरों के सुखी करने के भाव, दूसरों को दुःखी करने के भाव – ये सब अध्यवसान हैं, क्योंकि तू किसी को सुखी–दुखी नहीं कर सकता है, मार बचा नहीं सकता है, यह हवाई कल्पना है, मिथ्या मान्यता है।

हे भगवन् ! आपने तो यह कहा कि अध्यवसान भाव छोड़ो और उसका अर्थ मैं यह समझा कि जिन्हें मैंने अपना मान रखा है, जो व्यवहार है; उसे त्यागने की बात आप मुझसे कह रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि जिनवाणी में जब भी व्यवहार से पर के त्याग की बात कही जाती है तो उसका आशय पर के लक्ष्य से होनेवाले एकत्व–ममत्व के त्याग से ही होता है; इसी का नाम समस्त व्यवहार का त्याग है।

शिक्षण शिविर पत्रिका

शिक्षण शिविर पत्रिका

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

उत्तर कर्नाटक में धर्मप्रभावना

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित राजेन्द्रजी पाटील (यलिमुन्नोलि) एवं वर्तमान छात्र पण्डित अनेकान्तजी शास्त्री (उगार) ने कर्नाटक प्रान्त के कुसनाल, शिरगुप्पी, नंदगांव, यलिमुन्नोलि, उगार, गुलबर्गा, आलन्द, तेलेकुणी एवं शिरोल (वा) - गांवों में लगातार एक महिने प्रवचन, प्रौढ़कक्षा, बालकक्षा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम कराकर अभूतपूर्व धर्म प्रभावना की। इन समस्त गांवों में लगभग 500 से भी अधिक बालक-बालिकाओं एवं मुमुक्षुओं ने लाभ लिया।

समाज के सभी लोगों ने आगामी दशलक्षण पर्व में विद्वानों को बुलाने के लिए आमंत्रण दिया एवं ग्रीष्मकालीन अवकाश में शिविर लगाने का आग्रह व्यक्त किया। साथ ही समाज के लोगों ने पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की भूरी-भूरी प्रशंसा की।

वैराग्य समाचार

वयोवृद्ध विद्वान पण्डित तेजमलजी जैन पिड़ावा का दिनांक 13 जून 2003 को 81 वर्ष की आयु में समाधिमरणपूर्वक देहावसान हो गया है। आप तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की गतिविधियों से जीवनभर जुड़े रहे तथा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित समस्त कार्यक्रमों में सक्रिय सहयोग देते रहे। आपके निधन से समाज को अपूरणीय क्षति हुई है।

आपने अपने परिवार को भी गहरे धार्मिक संस्कार दिये। इसी का प्रतिफल है कि आपके सुपुत्र कमलचन्दजी तथा सुपौत्र मनीषजी शास्त्री पिड़ावा भी वर्तमान में तत्त्वप्रचार की गतिविधियों में संलग्न हैं।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो - यही मंगल कामना है।

महावीर पुरस्कार वर्ष 2003 एवं ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार

प्रबन्ध कारिणी कमेटी, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी के वर्ष 2003 के महावीर पुरस्कार के लिए जैनधर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि सं संबंधित किसी भी विषय की पुस्तक/शोध प्रबन्ध की चार प्रतियाँ दिनांक 30 सितम्बर 2003 तक आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में प्रथम स्थान प्राप्त कृति को 21 हजार रुपये एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा तथा द्वितीय स्थान प्राप्त कृति को ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार 5हजार रुपये एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। 31 दिसम्बर 1999 के पश्चात् प्रकाशित पुस्तक ही इसमें सम्मिलित की जा सकती है।

नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिये संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-से पत्र व्यवहार करें।

- संयोजक, डॉ. कमलचन्द सौगाणी

आगामी वर्ष के शिविरों की तिथियाँ निश्चित

* प्रशिक्षण शिविर - रविवार, 9 मई 2004 से बुधवार 26 मई 2004 तक। * शिक्षण-शिविर रविवार, 1 अगस्त 2004 से 10 अगस्त 2004 तक जयपुर में। * शिक्षण-शिविर रविवार, 17 अक्टूबर 2004 से 26 अक्टूबर 2004 तक जयपुर में।

चल शिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न

यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द नैतिक शिक्षा समिति द्वारा आयोजित चल शिक्षण शिविर के अन्तर्गत 8 जून से 14 जून 2003 तक निम्न स्थानों पर धार्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

1. कोटला : यहाँ पण्डित अनन्तवीर जैन शास्त्री फिरोजाबाद द्वारा प्रवचन, कक्षायें एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये, जिसमें 50 बालक-बालिकाओं एवं करीब 100 मुमुक्षों ने लाभ लिया। **- चन्द्रप्रकाशजी**

2. कुरावली : यहाँ पण्डित संतोषजी शास्त्री बोगार एवं पण्डित अनुरागजी जैन फिरोजाबाद द्वारा प्रवचन, कक्षायें एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये, जिसका सम्पूर्ण समाज ने लाभ लिया। **- केशवचंदजी**

3. शिकोहाबाद : यहाँ पण्डित अभिनयजी शास्त्री जबलपुर एवं पण्डित अरहंतवीर जैन फिरोजाबाद द्वारा प्रवचन, कक्षायें एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये, जिसमें करीब 200 बालक-बालिकाओं ने एवं 300 मुमुक्षों ने लाभ लिया। **- अनिल जैन**

4. कुर्राचित्तरपुर : यहाँ पण्डित अश्विनकुमारजी शास्त्री नौगामा द्वारा प्रवचन, कक्षायें एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम कराये गये, जिसमें अनेक बालक-बालिकाओं एवं मुमुक्षों ने लाभ लिया। **- डॉ. भगवानस्वरूपजी**

दशलक्षण पर्व हेतु आमंत्रण-पत्र शीघ्र भेजें

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के पास दशलक्षण पर्व के पावन अवसर पर प्रवचनकार विद्वान भेजने हेतु प्रतिवर्ष सैंकड़ों पत्र प्राप्त होते हैं; समय पर आमंत्रण पत्र प्राप्त होने से हमें विद्वानों की उचित व्यवस्था करना संभव हो पाता है। अत: अपने आमंत्रण 25 जुलाई 2003 तक अवश्य ही भेज देवें। इसके बाद आनेवाले पत्रों पर विचार करने में असमर्थता होगी। पते में फोन व एस. टी. डी. कोड व पिन कोड नम्बर लिखना न भूलें।

- मंत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) **जुलाई (प्रथम) 2003**
J.P.C. 3779/**02/2003-05**

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा जयपुर**, डबल एम.ए. (जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन) तथा इतिहास
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127